रजस्वला स्त्री के कर्तव्य

स्त्रियों के स्वभावत: प्रतिमाह रज:स्राव होता है, जिसकी अशुद्धि तीन दिन पर्यन्त रहती है। चौथे दिन स्नान कर अपने पति-पुत्र के लिए भोजन बनाने की आज्ञा शास्त्रों में है। आहार-दान, पूजन, विधान, हवन आदि धर्मकार्यों के लिए (यदि पूर्ण शुद्धता है तो) पाँचवें दिन शुद्ध मानी जाती हैं।

बीसवीं शताब्दी के यौवन काल में शिक्षा का अधिकत: अभाव था, इसलिए अज्ञानता के कारण स्त्रियाँ रजस्वला अवस्था में करने योग्य और न करने योग्य कार्यों को प्राय: नहीं जानती थीं। वर्तमान में शास्त्रप्रकाशन, पठन-पाठन एवं उपदेशादि के माध्यम से शिक्षा का प्रसार तो अत्यधिक है, किन्तु स्कूलों और कालेजों में दी जानेवाली धर्मनिरपेक्ष शिक्षा आज की नवीन पीढ़ी को रजोधर्म के कर्तव्य पालन करने से विमुख करती जा रही है। धार्मिक भावना एवं विवेक से हीन आज की शिक्षित लड़कियाँ रजस्वला अवस्था में नाना प्रकार की फैशन बनाती हैं। क्रीम, पाउडर, स्नो, लिपस्टिक

आदि लगा कर शादी-विवाह, कॉलेज, क्लब, बाजार, होटल, सिनेमा, थियेटर एवं सभा-सोसायटी आदि में घूमती रहती हैं। सब प्रकार के मनुष्यों से वार्तालाप करती हैं। सब पदार्थों का स्पर्शादि करती हैं, और भी अनेक नहीं करने योग्य कार्य करती हैं, इसीलिए आज अधिकतर बलहीन, नेत्रज्योतिहीन, रोगी, दुर्बल, मूर्ख, कामी, व्यसनी और धर्मभावना से हीन सन्तान पैदा हो रही हैं, क्योंकि—

रजस्वला अवस्था में रुदन करने से गर्भ में आनेवाला बालक नेत्रहीन, अंधा, धुंधली या फूली आदि विकारों से युक्त होता है। उसकी आँखों में डोरा हो जाते हैं, पानी बहता रहता है, आँखें, कंजी, मांजरी तथा लाल हो जाती हैं, और भी नेत्र सम्बन्धी अनेक विकार हो जाते हैं।

रजस्वला अवस्था में नाखून काटने से बालक के नाखून टेढ़े-मेढ़े, काले, फीके, भद्दे और रुक्ष होते हैं तथा अनेक रोगों को उत्पन्न करनेवाले होते हैं।

रजस्वला अवस्था में तेल आदि लगाने से बालक कोढ़ी और खाज-दाद आदि रोगों से पीड़ित रहता है।

रजस्वला अवस्था में अंजन, सुरमा एवं उबटन आदि लगाने से सन्तान दुराचारी, व्यभिचारी और अन्य अनेक दुर्गुणों से युक्त होती है।

रजस्वला अवस्था में उच्चस्वर में बोलने या सुनने से सन्तान बहरी एवं कर्ण सम्बन्धी अन्य अनेक रोगों से पीड़ित उत्पन्न होती है।

रजस्वला अवस्था में दिन में सोने से सन्तान प्रमादी, बहुत सोनेवाली एवं ऊँघने वाली होती है।

रजस्वला अवस्था में अधिक हँसने से सन्तान के ओष्ठ, तालु, जिह्वा आदि काले पड़ जाते हैं।

रजस्वला अवस्था में अधिक बोलने से बच्चा प्रलापी, बकवादी,

असत्यभाषी एवं लबार होता है।

रजस्वला अवस्था में अधिक परिश्रम करने से उन्मादी एवं पागल सन्तान पैदा होती है।

रजस्वला अवस्था में खुले (चौड़े) में सोने से उन्मत्त सन्तान पैदा होती हैं

रजस्वला अवस्था में अधिक टीम-टाम और शृंगार आदि करने से सन्तान व्यभिचारिणी होती है।

उन दिनों ब्रह्मचर्यव्रत का पूर्ण पालन न करने से सन्तान अत्यन्त कामी और निर्लज्ज पैदा होती है, इस कारण रजस्वला अवस्था में इन सर्व अयोग्य दोषों का परित्याग कर तीन दिन पर्यन्त एकान्त स्थान में मौनपूर्वक रहना चाहिए। मन, वचन और काय से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना चाहिए। एकान्त स्थान में डाभ के आसन या चटाई आदि पर सोना चाहिए। पलंग, खाट, शय्या, वस्त्र, रुई एवं ऊन आदि के बिस्तरों पर नहीं सोना चाहिए। दिन में एक बार रस छोड़कर भोजन करना चाहिए। दूध, दधि, घी आदि नहीं खाना चाहिए और न गरिष्ठ भोजन करना चाहिए। रजस्वला अवस्था में भोजन पत्तल में करना चाहिए, यदि ताँबे या पीतल के बर्तनों में भोजन करें तो उन्हें अग्नि डालकर शुद्ध कर लेना चाहिए। उन दिनों में पहिने हुए वस्त्र (साड़ी-पेटीकोट आदि) अलग रखने चाहिए, उन वस्त्रों से आहारदान एवं पूजन आदि क्रियाएँ नहीं करनी चाहिए। तीन दिन पर्यन्त देव, शास्त्र, गुरु एवं राजा आदि का दर्पण में भी दर्शन नहीं करना चाहिए और न सम्भाषण आदि करना चाहिए। पंच नमस्कार किसी भी मन्त्र का उच्चारण नहीं करना चाहिए, केवल चिन्तन, मनन एवं स्मरण ही करना चाहिए।

तीन दिन पर्यन्त घर की किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्नान आदि (बाहर) का जल स्पर्श करने से, सिलाई, बुनाई करने से तथा गृह के और भी अन्य कार्य (कूटने,

पीसने, कपड़े धोने, अनाज आदि साफ करने, बर्तन माँजने, झाड़ू-बुहारी लगाने तथा पेड़-पौधों में जलादि सिंचन) करने से गृह की ऋद्धि-सिद्धि नष्ट हो जाती है, दरिद्रता का वास हो जाता है, दीन-हीन भावना और धर्महीन प्रवृत्तियों के उत्पन्न हो जाने से अनेक प्रकार की आपत्तियाँ-विपत्तियाँ घेर लेती हैं।

जब रजस्वला स्त्री की छाया पड़ने मात्र से नेत्ररोगी अन्धा हो जाता है, चेचक एवं मोतीझरा आदि की बीमारियाँ भयंकर रूप धारण कर लेती हैं, बड़ी-पापड आदि बेस्वाद और लाल हो जाते हैं, पकवान आदि उत्तम पदार्थ विकृत हो जाते हैं तथा मजीठ आदि का रंग विरंग हो जाता है, तब पदार्थों का स्पर्श आदि करने से तो पवित्रता नष्ट होगी ही।

जो स्त्रियाँ अज्ञान से, प्रमाद से, अहंकार से, परवशता से या दैवयोग से उपर्युक्त कार्य करती हैं अर्थात् रजोधर्म का शास्त्रोक्त रीति से पालन नहीं करती हैं, वे इस भव में रोग, शोक, मोह, दरिद्रता एवं निन्दा आदि को प्राप्त होती हैं और पर-भव में कूकरी, शूकरी आदि पर्यायें धारण करती हुई तिर्यंच पर्यायजन्य अपरिमित कष्ट भोगती हैं। यदि मनुष्य पर्याय भी प्राप्त हो गई तो चाण्डाल आदि नीचकुल में अथवा भिखारियों के यहाँ उत्पन्न होकर दु:ख भोगती हैं। स्त्रीपर्याय प्राप्त कर वैधव्यजन्य और गलित कुष्ठरोगादिजन्य दु:ख भोगती हैं।

वर्तमान युग में नवीन (पाश्चात्य) शिक्षा प्राप्त लड़के-लड़कियाँ इस रजस्वला अवस्था को अपवित्र नहीं मानते। पककर फूट जानेवाले फोड़े फुन्सियों से जो रक्तस्राव होता है, उसी के समान इसे मानकर न तो वे ब्रह्मचर्यव्रत रखते हैं और न भोजनादि बनाने में, स्पर्शास्पर्श में ग्लानि करते हैं, क्योंकि आगम में रजस्वला स्त्री को प्रथम दिन चाण्डालनी सदृश, दूसरे दिन ब्रह्मघातिन सदृश और तीसरे दिन धोबिन सदृश कहा है।

दूसरी बात है कि फोड़ा-फुन्सी स्त्री-पुरुष दोनों के होते हैं, बाल, युवा एवं वृद्ध इन तीनों अवस्थाओं में हो सकते हैं। फोड़ा जहाँ

होता है वहाँ सूजन आ जाती है, उसे पकाने और फोड़ने के लिए औषधियों का प्रयोग करना पड़ता है। मांस उभर आता है। रक्त के साथ पीप भी आती है और पीप निकल जाने के बाद घाव हो जाता है जो औषधियों के प्रयोग से भरता है। फोड़े आदि होने का कोई ऐसा नियम नहीं है वह प्रत्येक माह में ही हो। रजस्वला होने के पूर्व अंगड़ाई आना, पेट, कमर एवं पैरों आदि में दर्द होना, प्रमाद एवं मन की अप्रशस्ततारूप जो चिन्ह उत्पन्न होते हैं, वे फोड़ा-फुन्सी होने के पूर्व नहीं होते।

उपर्युक्त इन सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि स्त्री-पर्याय के साथ रजोधर्म का अविनाभाव सम्बन्ध है। जो स्त्रियाँ रजस्वला नहीं होती, वे नियमतः बन्ध्या रहती हैं

संसारभीरू, दुःखभीरू तथा सुख-शान्ति एवं कल्याणेच्छु नर-नारियों को आगम पर दृढ़ श्रद्धा रखते हुए सभी कार्य विवेक-पूर्वक करने चाहिए और स्पर्शास्पर्श का ध्यान रखते हुए धर्म की रक्षा करनी चाहिए।